# मुसलमान जिस देश में जिसके साथ रहते हैं, उनके साथ उनका झगड़ा है

हिन्दू लोग सारी दुनिया में विभिन्न समुदायों के साथ रहते हैं। कहीं उन का किसी और से झगड़ा नहीं। दूसरी ओर, मुसलमानों का सारी दुनिया में हर कहीं, हर समुदाय के साथ झगड़ा है। कहीं वे शांति से रहते नहीं दिखते। जहाँ दूसरे नहीं, वहाँ उन की लड़ाई दूसरे मुसलमानों से ठनी हुई है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान से लेकर अरब, अफ्रीका तक यही दृश्य है। ऐसा क्यों ?

क्योंकि इस्लाम का मूल सिद्धांत दूसरों को बर्दाश्त न करना है। कुरान में बार-बार दुहराई गई बात है कि गैर-मुस्लिमों को इस्लाम में लाओ, हीन बना कर रखो या खत्म करो। उस में सत्तर से अधिक आयतें ऐसे आवाहन करती हैं। उस के अब तक के दुष्परिणामों पर मुसलमानों को सोचना चाहिए।

आज वैसे आवाहन और व्यर्थ हैं। एक तो अब खंजर तलवार का जमाना नहीं रहा। यह साइंस-तकनीक का युग है, जिस में मुस्लिम विश्व सिफर है। दूसरे, जब आपने जोर-जबर्दस्ती लोगों को मुसलमान बनाया, और अब दूसरे उस क्रिया को रोकना उलटना चाहें तो शिकायत कैसी ? जब आपके पास ताकत थी, तो पूरी दुनिया में जहाँ तक संभव हुआ, दूसरों को खत्म या धर्मांतरित किया। सारी इस्लामी तारीख फख्र से यही बयान करती हैं !

तब दूसरों द्वारा उस सिद्धांत और व्यवहार की निंदा होने पर रंज होने के बदले सोच-विचार करना चाहिए। कोई राजनीतिक विचारधारा अचल-अजर नहीं है। विश्व-इस्लाम के खलीफा पद को खुद मुसलमानों ने खत्म किया। तुर्की में 1924 में मुस्तफा कमाल ने खुले आम कहा कि इस्लाम और कुरान 'मृत' हो चुके हैं ! यह एक आधुनिक मुस्लिम नेता ने कहा था। पाशा ने खलीफा के साथ-साथ शरीयत, अरबी भाषा और इस्लामी वेश-वूषा को भी देश-निकाला दे दिया था।

याद रहे, तब कमाल पाशा दुनिया में लोकप्रिय थे। भारत में जिन्ना भी पाशा के दीवाने थे। पाशा की जीवनी 'ग्रे वुल्फ: मुस्तफा कमाल' उन की प्रिय पुस्तक थी। सब जानते हैं कि जिन्ना को इस्लाम से कोई मतलब न था। वे मुल्ले-मौलवियों के पक्के विरोधी थे। (यदि गाँधीजी राजनीति में न आते, या जिन्ना को उपेक्षित न करते तो पता नहीं आज भारत व दुनिया की तस्वीर क्या होती !)

इसलिए, आज ये गुस्सा कि 'इस्लाम का अपमान' अथवा ये या वो 'नहीं हो सकता' बेकार है। तमाम महान दर्शन-चिंतन को ठुकराने के अलावा यह गैर-मुस्लिमों की बौद्धिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक उपलब्धियों को नकारने की जिद है। यह हारी हुई लड़ाई है। भारत, अमेरिका, इजराइल, आदि को दोष देते रहना बहाना है।

सारा गुस्सा यह है कि 'एक मात्र सत्य' इस्लाम का कुछ नहीं बन रहा। जबकि जिन काफिरों को खत्म हो जाना था, वे हर चीज में आगे हैं। साइंस-तकनीक, सुविधा, मनोरंजन के सारे आविष्कार यूरोपियनों, अमरीकियों की देन हैं। इन का उपभोग दुनिया भर के मुस्लिम करते हैं। लेकिन इस के लिए 'थैंक्यू' कहने

के बजाए, सब को कोसते हैं। यही मुस्लिम अशान्ति की मूल वजह है। चौदह सौ साल पुराने अंधविश्वास और आज की सचाई में ताल-मेल न बिठा सकने के कारण है। बाकी सारे कारण छोटे हैं।

इस का समाधान सैनिक तरीके से संभव नहीं। मुसलमानों को मोमिन-काफिर का भेद त्याग कर समान मानवता का आधार स्वीकार करना चाहिए। यही सच है और व्यवहारिक भी कि मजहब, राष्ट्रीयता, भाषा, आदि के परे सभी मनुष्य समान हैं। मनुष्य इस्लामी मतवाद से पहले भी थे और बाद में भी रहेंगे। लोग किसी दिन इस्लाम में आए थे और एक दिन छोड़ कर जाएंगे।

यदि ऐसा न होता, तो इस्लाम पर शंका करने वाले मुसलमान लेखकों, कवियों का कत्ल करने, फतवे देने की जरूरत न होती। मनुष्य की सहज प्रवृत्ति स्वतंत्रता है। क्या मुसलमानों को इस्लाम छोड़ने की छूट है? इस्लामी बंदिशें तोड़कर जानने-समझने, लिखने-बोलने की आजादी है? यहूदियों, हिन्दुओं, ईसाइयों, बौद्धों, जैनियों, सब को है। इन सब को अपना धर्म-मत छोड़ने की स्वतंत्रता भी है। यदि मुसलमानों को नहीं, तो इस्लाम एक कैदखाना ही है। इस से मुक्त होने की बात एक मानवीय बात है। यह किसी का अपमान नहीं है।

यह काल्पनिक भी नहीं है। मुस्तफा कमाल ने इसी को सहजता से किया, करवाया था। आज अमेरिका, यूरोप में रहने वाले असंख्य मुसलमान इस्लाम से प्रायः मुक्त ही हैं। वे अधिकांश इस्लामी कायदे स्वेच्छया छोड़ चुके हैं। जो पालन करना चाहते हैं वे कर ही रहे हैं। यह आजादी ही सहज स्थिति होगी जो मुस्लिम देशों में भी होनी चाहिए। अभी वहाँ जबर्दस्ती है। यही उन की अशान्ति, विकृति, तबाही और पिछड़ेपन का कारण भी है।

भारत और पाकिस्तान की तुलना से भी स्थिति समझ सकते हैं। इस्लामी दबदबा के सिवा पाकिस्तान में भारत से कोई ऐतिहासिक, सामाजिक अंतर नहीं है। इसलिए वहाँ पिछले सत्तर सालों में जो हुआ, उस का कारण खोजें। वहाँ अधिकांश तबाही व दुर्गति केवल तरह-तरह की इस्लामी जिद से जुड़ी है।

इस पर भी सोचें कि इस्लाम पर आलोचनात्मक विमर्श और हिंसा में विपरीत अनुपात संबंध है। जितनी ही खुली आलोचना होगी, उतनी ही समझ बढ़ेगी, और हिंसा का कारण खत्म होता जाएगा। इस के उलट, इस्लाम को विशेष आदर के नाम पर जितनी उस के अंधविश्वासों पर चुप्पी रहेगी, उतना ही तनाव रहेगा। खुद इस्लामी फिरकों की आपसी हिंसा बढ़ेगी। क्योंकि इस्लामी शुद्धता की माँग अंतहीन है। उसे संतुष्ट किया ही नहीं जा सकता। जैसा आरिफ मुहम्मद खान कहते हैं, हर मुस्लिम संगठन दूसरे मुस्लिम संगठन को काफिर कहता रहा है, यानी खत्म कर देने लायक। यह क्या चीज है?

दूसरी ओर देखें कि इस्लाम की आलोचना करने वालों ने किसी मुसलमान को चोट नहीं पहुँचाई। वे सदैव मुस्लिमों के प्रति सदभावपूर्ण रहे। दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, श्रीअरविन्द, टैगोर से लेकर आज राम स्वरूप, सीताराम गोयल, श्रीकान्त तलाघेरी, कोएनराड एल्स्ट, आदि सभी आलोचक निहायत अहिंसक हैं। इस के विपरीत, इस्लाम को आदर देने वाले जॉर्ज बुश, ओबामा से लेकर सद्दाम, खुमैनी, बगदादी, और तालिबान, जमात-उल-दावा, लश्करे-तोयबा, जैशे-मुहम्मद, हिजबुल-मुजाहिदीन, इस्लामी स्टेट, आदि ने ही लाखों मुसलमानों को मारा है। क्या मुसलमानों को यह नहीं देखना चाहिए?

भारत में सही काम अभी तक न हो सका, इस के मुख्य दोषी वे सेक्यूलर प्रोफेसर, लेखक, संपादक हैं जिन्होंने इस्लाम के इतिहास और मतवाद पर विमर्श को रोके रखा। उन मुसलमानों को भी बोलने न दिया, जो अपनी आजादी की आवाज उठाते रहे हैं। इस्लाम की रक्षा, दबदबा, आदर, आदि नाम पर भारत में जो हिंसा होती रही है, उस के मुख्य अपराधी वे सफेदपोश सेक्यूलर बौद्धिक और नेता हैं, जिन्होंने शरीयत का पक्ष लेकर इन्सानियत के स्वर का दमन किया।

इन्सानियत के लिए इस्लाम के सिद्धांत-व्यवहार की आलोचना का रास्ता खोलना जरूरी है। तभी वह बौद्धिक तिलस्म टूटेगा जो सारे जिहादी, आतंकी बनाता रहा है। जो मुसलमानों को भी दूसरे मुसलमानों को काफिर कह-कह कर मारना सिखाता है। यह असहिष्णुता और जिहादी आतंकवाद मुख्यतः दिमागी समस्या है। इस का इलाज चेतना में बदलाव से ही होगा।

मानवता का दावा पूरे मुस्लिम समुदाय पर है। इस में कुछ भी गलत नहीं। मुसलमानों को गैर-मुसलमानों को समानता देने और समानता लेने पर सोचना चाहिए। यह मजहब से ऊपर उठ कर ही हो सकता है।

साभार- https://www.nayaindia.com से